राजभाषा : एक विश्लेषण

मो॰ मजीद मिया

सर्वप्रथम मैं उन मनीषियों, देशभक्तों और शहीदों को श्रद्धांजली अर्पित करता हूँ जिनके दृढ़ संकल्प , कठिन परिश्रम, तयाग और बलिदान से भारत को आजादी मिली एवं हिन्दी को राजभाषा का उच्च पद प्राप्त हुआ। इसके साथ ही मैं उन देशभक्त जवानो के प्रति श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूँ जिन्होने इस देश के भौगोलिक , सांस्कृतिक एवं अखंडता की रक्षा के लिए अपने प्राणो को बलिदान कर दिया। इस 68 वर्ष के लम्बे अन्तराल में सूचना , प्रौढ़योगिकी, कृषि, विज्ञान, चिकित्सा, इंजिनियरिंग आदि के क्षेत्र में आशातीत सफलता हमने प्राप्त की और कई क्षेत्रों में आत्मनिर्भर हो गए।

आत्मगौरव और आत्मनिर्भर की परम्परा के विकास के लिए हमने हिन्दी को राजभाषा बनाया , इसका मुख्य उद्देश्य था कि अपने देश में भी एक संपर्क भाषा हो तथा सारा काम-काज इसी भाषा में हो।

आज भाषा का प्रश्न मात्र संस्कृति से ही नहीं बल्कि वाणिज्यिक से भी जुड़ा है। भाषा का प्रश्न जितना हमारी सांस्कृतिक परम्पराओं से जुड़ा है उतना ही हमारी आर्थिक वास्तविकता से भी।

कहते हैं कि अँग्रेजी साम्राज्य का सूरज कभी नहीं डूबता था कारण अंग्रेजों का उपनिवेश विश्व के हर कोने पर था , विश्व-मानचित्र के हर दशवें देशांतर पर अंग्रेजों का वाणिज्यिक अधिकार था। इस एतिहासिक वास्तविकता से उठता मेरा प्रश्न सीधा सा यह है कि अगर उन्नीसवीं सदी तक अंग्रेजों का वानिज्यिक उपनिवेश इस विश्व के लगभग प्रत्येक कोने में नहीं होता तो , क्या आज विश्व में अंग्रेजों का इतना विस्तार और वर्चस्व होता ? अंग्रेजों का वानिज्यिक व्यापार विश्व में इतना फैला नहीं होता तो क्या आज अँग्रेजी विश्व की सबसे बड़ी सम्पर्क भाषा के रूप में उभरती?

भाषा के मुद्दे को वाणिज्य व्यापार की परिधि से उठाने की मेरा तात्पर्य स्पष्ट है। मैं न तो वाणिज्य उपनिवेशवाद का समर्थक हूँ और न ही साम्राज्यवाद का प्रवक्ता। मेरा आशय मात्र उस एतिहासिक सच्चाई की तरफ इसारा करना है जिससे यह विश्व गुजर चुका है या गुजर रहा है। आज यूरोप के शिक्षण संस्थाओं में , एशियाई भाषाओं को सीखने के उपक्रम में सर्वाधिक भीड़ जापानी , चीनी या कोरियाई भाषी की हो रही है। इसका कारण स्पष्ट है विश्व की आर्थिक संरचना में एशिया मे ये ही देश हैं , जो अपना वाणिज्यिक वर्चस्व विश्व के वित्तीय दुनिया में अंकित करा चुके हैं।

हम सभी तेजी से बदलाव की चौखट पर हैं। यह विश्व संक्रान्ति के दौड़ से गुजर रहा है। इक्कीसवीं सदी का विश्व नए आर्थिक अनुबंधों की नई वित्तीय संरचना और अभिनव वाणिज्यिक-व्यापार के ढांचे का विश्व है। जिसमें हम प्रवेश कर चुके हैं। हम चाहें न चाहें, हमारी गति यही है, हमारी नियति यही है, हमारा भविष्य यही है। संचार क्रांति ने सम्पूर्ण विश्व को एक छोटे से क्षेत्र में बदल दिया है। आज विश्व-ग्राम और विश्व-बाजार की अवधारणा कोई व्यर्थ कल्पना नहीं बल्कि इक्कीसवीं सदी की वास्तविकता है जहां हम सूचना क्रांति की नई-नई अवधारणाओं के साथ लगातार नए-नए प्रयास कर रहे हैं।

भारत एक विकासशील देश है। हम सदियों से विकासरत रहे हैं तो क्या सदियों तक विकासरत ही रहेंगे। क्या हम विश्व के विकसित राष्ट्रों की श्रेणी में कभी गिने नहीं जाएंगे ? क्या इक्कीसवीं सदी के नए विश्व में हमे अपना वह

अपेक्षित स्थान नहीं चाहिए जिसके हम वस्तुतः हकदार हैं और जिसकी समस्त संभावनाएं इस देश में मौजूद भी हैं। क्या इस नए विश्व में वर्चस्व स्थापित करने के लिए हमें नए आर्थिक अनुबन्ध , विश्व बाजार का प्रारूप , विश्व वाणिज्य की दशा-दिशा और भारतवर्ष के समुचित आर्थिक विकास को भलीभाँति समझना नहीं होगा ? इन सभी प्रश्नो के उत्तर अगर हम हाँ कहते हैं तो फिर हमारी समस्या क्या है?

हमारी मूलभूत समस्या हमारे सोंच की प्रक्रिया में हैं, हमारे चिंतन में है, हम हमारे विचार-विनिमय की पद्धति में हैं, हमारे विमर्श के हर एक भाग में है। उदाहरण के लिए , भाषा और राजभाषा के प्रश्न को लें। भाषा के संदर्भ में अक्सर हम हृदय से सोंचते है, भावना की परिधि में विचारते हैं, भाषा और राजभाषा के संदर्भ में हम अक्सर भावुक प्रश्न उठाते हैं और उन प्रश्नों का उतनी ही भावुकता से उत्तर देने का प्रयास भी करते हैं।

आज भाषा के संदर्भ में हमें हृदय से नहीं बल्कि मस्तिष्क से सोंचना होगा। आज की परिस्थितियों से यह स्पष्ट हो गया है कि भाषा का संदर्भ जीतना हृदयपरक है उतना ही व्यावहारिक भी। भाषा का प्रश्न जितना सांस्कृतिक है उतना आर्थिक भी। आज भाषा मात्र विचार विनिमय का माध्यम ही नहीं है बल्कि यह वाणिज्य व्यापार का सम्पर्क सूत्र या आधारभूत समीकरण भी है।

आज भाषा किसी जनसमूह की जातीय सांस्कृतिक और साहित्यिक अस्मिता का परिचायक ही नहीं , वह किसी देश की वाणिज्यिक समृद्धि की सशक्त बुनियाद भी है।

किसी भी देश के समुचित और समग्र विकास के संदर्भ में बैंकों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। बैंक किसी भी देश की वित्तीय व्यवस्था का मेरुदंड होता है। बैंक कोई संस्था मात्र नहीं है बल्कि एक वित्तीय अधिरचना है जिसकी बुनियाद पर उस देश के वाणिज्य-व्यापार की संरचना टिकी होती है। बैंक देश के आर्थिक तंत्र का वह केन्द्रीय पड़ाव है जिससे होकर आर्थिक अनुबन्ध व वाणिज्य की गाड़ी अपने-अपने मंजिल तक पहुँचती है। बैंक वित्तीय व्यवस्था के आर्थिक सम्बन्धों के तत्पर विनिमय का माध्यम है।

बैंकों में भाषा का महत्व और भी बढ़ जाता है। बैंक एक व्यापारिक परतिष्ठान है जहां इसका सम्बंध साधारण जनता से है। यह सत्य है कि अँग्रेजी भाषा के माध्यम से भारत में कोई भी कारोबार नहीं चल सकता। हमारे नेतागण संसद में भले ही अँग्रेजी भाषा का प्रयोग करते हों परन्तु वोट रूपी लाभ पाने के लिए उन्हे भारतीय भाषाओं का ही प्रयोग करना पड़ता है। आज विदेशी कंपनियों को ग्राहक आकर्षित करने के लिए अपने प्रचार मनोरंजक चैनल से लेकर डिस्कवरी चैनल तक , सभी में हिन्दी का प्रयोग करते हुए देखा जा सकता है। अतः जब तक व्यापारिक संगठन यहाँ की भाषाओं को नहीं अपनाएँगे उनके लाभ में बृद्धि कभी नहीं हो सकता। उन्हे यहाँ की भाषाओं को सीखना ही पड़ेगा। किसी भी देश की सभ्यता और संस्कृति के साथ उसके नागरिकों की मानवीय संवेदना तथा अस्मिता का अंतर्निहित सम्बंध होता है। भाषा का अभाव देश को गूंगा बना देता है और तब सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक उन्नति के बावजूद उस देश एवं उसके नागरिकों की अपनी कोई अस्मिता नहीं रह जाती क्योंकि मूलतः नागरिक के रूप में मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और उसने अपनी सुख सुविधाओं के लिए जीतने भी उपकरण एकत्रित किए हैं , उनमे सामाजिक पक्ष का विशेष महत्व है। व्यावसायिक क्षेत्र में जो भाषा सबसे अधिक ग्राहक और विक्रेता के बीच सम्बंध स्थापित करती है, वही भाषा उनके लिए लाभकारी साबित होती है। आज बैंकिंग क्षेत्र में प्रत्येक स्तर पर प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ रहा है। जहां हर मोड पर विदेशी बैंकों के साथ हर क्षेत्र में चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है , जहां बेहतर ग्राहक सेवा की अत्यन्त आवश्यकता है। बैंकों का सारा कामकाज एवं लाभप्रदता, ग्राहकों पर आधारित है। हमारे जीतने भी राष्ट्रीयकृत बैंक हैं उनके ग्राहक मात्र ऊंचे वर्ग

एवं शहरी क्षेत्र के नहीं बल्कि साधारण नागरिक, मजदूर, गृहणियाँ, विद्यार्थी हैं जो दूर-दराज के गाँव से लेकर, शहर के मजदूर एवं रिक्साचालक भी है। अतः बैंक की लाभप्रदता में भारतीय भाषाओं के योगदान को झुठलाया नहीं जा सकता। बैंकिंग व्यवसाय का मुख्य केंद्र शाखा होती है जहां ग्राहकों का सीधा सम्बंध बैंक कर्मियों से होता है। यही वह स्थान है जहां पर बेहतर ग्राहक सेवा द्वारा अधिक ग्राहकों को आकृष्ट कर सकते हैं। ऐसे में अँग्रेजी के माध्यम से हम क्या ग्राहक सेवा तथा ग्राहक संतोष की कल्पना भी कर सकते हैं ? कदाचित नहीं ..... निश्चित रूप से नहीं। नवीनतम आंकड़ों के अनुसार अँग्रेजी भाषियों का प्रतिशत लगभट 10 है। शेष 90 से बैंकिंग करते समय क्या उनकी भाषा की उपेक्षा करके हम व्यवसाय एवं लाभ अर्जन कर सकते हैं ? बैंकों के विकास में भाषा का भी अब विशेष महत्व हो गया है एवं इसे नित्य के व्यवहार में सहज रूप में स्वाभाविकता से अपनाना होगा। बेहतर ग्राहक सेवा में भाषा का महत्व निहित होता है। यदि आप बंगाल के किसी शाखा में कार्यरत है और वहाँ यदि कोई ग्राहक मध्यप्रदेश या उत्तर प्रदेश से आया हो तथा उसे केवल हिन्दी भाषा का ही ज्ञान हो। यदि आप उस व्यक्ति से हिन्दी में बाद करेंगे तो वह स्वतः मानसिक तौर पर आपके अधिक नजदीक आएगा एवं आपके व्यवहार एवं मृदुभाषिता देखकर उसमें अपनत्व का बोध होगा फलस्वरूप आपके बैंक के साथ अपना कारोबार बढ़ाने में उसे थोड़ी भी हिचकिचाहट नहीं होगी। अतएव हम यदि देश में एक संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी को अपनाए तो विश्वास है कि हमारे ग्राहक में अपनापन का बोध होगा तथा वे अपनी समस्या का हल उसी समय पाने में भी समर्थ होंगे। ग्राहक निवारण समिति के गठन के परिणामस्वरूप आज शिकायत देशी भाषाओं में भी प्रपट होने लगे हैं , अतः प्रत्येक बैंक के कर्मियों को हिन्दी का ज्ञान होना आवश्यक हो गया है। किसी भाषा को सीखने तथा उसका प्रयोग सरकारी काम-काज में करना , उस व्यक्ति विशेष की उपलब्धि होती है। भाषा मनुष्य का व्यावहारिक संस्कार है। व्यक्ति जिस समाज में जन्म लेता है , बिना किसी प्रयत्न के वह वहाँ के सम्प्रेषण के माध्यम को सीख लेता है और आने वाली पीढ़ी में भी उसकी आनुवंशिकता चलती रहती है जिससे भाषा सीखना सहज होता है। सभी बैंक के कर्मियों को मुख्यतः दो भाषाओं का ज्ञान होना आवश्यक है। एक तो उनकी अपनी मातृभाषा जैसे - हिन्दी, बंगला इत्यादि क्षेत्रीय भाषा एवं दूसरी अँग्रेजी। अँग्रेजी का ज्ञान उन्हे इसलिए है कि हमारा बैंकिंग उद्योग इसी भाषा में कार्यरत है। सन 1976 ई॰ से बैंकों में राजभाषा कार्यान्वयन सम्बंधी कार्यकाल शुरू हुई , तब से लेकर आज तक राजभाषा विभाग प्रशिक्षण प्रोत्साहन योजनाओं, गोष्ठियों आदि का आयोजन कर बैंक कर्मियों में राजभाषा हिन्दी में काम करने के लिए प्रेरित कर रहा है। हिन्दी आज पूरे देश में समझी एवं बोली जाती है, अतः यदि हमारे बैंक कर्मी हिन्दी सीखते हैं तथा इसका प्रयोग अपने काम-काज में करते हैं तो यह उनके लिए एक विशेष योग्यता हो जाती है। वे ग्राहकों से हिन्दी में भी बात कर सकते हैं तथा हिन्दी का अधिकाधिक प्रयोग कर अपनी भाषा एवं संस्कृति के विकास में अग्रणी भूमिका निभा सकते हैं। बैंक कर्मियों में इसके विकास के फलस्वरूप प्रबन्धन को भी सुविधा होगी। भाषाई विवाद के कारण कर्मचारियों के स्थानांतरण में भी कई बार असुविधाओं का सामना करना पड़ता है। यदि कोई बैंक कर्मचारी हिन्दी सिखता है तो वह केवल मातृभाषा ही नहीं सिखता बल्कि भारत की समस्त संस्कृति एवं परम्पराओं को भी सीखता है। वह इस माध्यम से हिन्दी साहित्य की विस्तृत सम्पदा का भी लाभ उठा सकता है तथा वह स्वदेशी भाषा का अपने घर में अनुकूल वातावरण बना सकता है।

परंतु खेद का विषय है कि आज हम राजभाषा का ही पूर्ण विकास करने में असमर्थ रहे हैं। अतएव राजभाषा का प्रचार-प्रसार करने के लिए हमें प्रत्येक स्तर पर कुछ आवश्यक कदम उठाने होंगे। सबसे पहले हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि हमें हिन्दी को ही राजभाषा बनाना है।

अतः हिन्दी को राजभाषा बनने में बाधक तत्वों एवं इसकी समस्याओं पर दृष्टिपात करना आवश्यक है। हमारे देश में राजनैतिक उथल-पुथल कई वर्षो से होते आए हैं फलस्वरूप हमारे शासक बदलते गए और हमारी राजभाषा भी

बदलती गयी। कभी संस्कृत तो कभी पालि, कभी फारसी तो कभी अँग्रेजी और कभी हिन्दी। कहने का आशय है कि हमारे देश में राजभाषा की लंबी परम्परा नहीं बनी, परिणामस्वरूप हम आज भी भाषा को राजभाषा के संदर्भ में पूर्ण उन्नत नहीं कर पाए हैं। स्वतन्त्रता के साथ-साथ हमने हिन्दी को राजभाषा के रूप में अपनाने की घोषणा तो कर दी परन्तु व्यावहारिक रूप में अँग्रेजी ही राजभाषा बनी रही। विडम्बना तो यह है कि कुछ लोग अँग्रेजी आसानी से लिख सकते हैं तो बोलने में असमर्थ है और कुछ लोग हिन्दी आसानी बोलते हैं तो लिखने में असमर्थ। यही हमारी वास्तविक स्थिति है।

यदि थोड़ा पीछे मुड़कर देखें तो आजादी के पूर्व संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी ही थी क्योकि इस भाषा को जनसमर्थन प्राप्त था। लोग चाहते थे कि हिन्दी देश की राष्ट्राभाषा बने।

उल्लेखनीय है भाषा का प्रश्न अन्तराष्ट्रिय वाणिज्य में वित्तीय वर्चस्व तक सीमित नहीं है , बल्कि यह किसी देश या जाती की सार्वजनिक आर्थिक उन्नति , स्वतन्त्रता या संप्रभुता से भी जुड़ा हुआ होता है। इतिहास गवाह है कि 1857 का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम असफल हो गया था। विशेषज्ञों के अनुसार इसके अनेक कारण थे और उनमें प्रमुख था - समूचे देश में एक संपर्क भाषा की अनुपस्थिति। सफलता की समस्त संभावनाओं के बावजूद भी यह जनान्दोलन विफल हो गया, यह प्रयास राष्ट्रीय स्तर पर उन्नत न हो सका बल्कि क्षेत्रीय और विकेन्द्रित ही होकर रह गया क्योंकि सम्पूर्ण देश की भावना और व्यवहार के स्तर पर बंधनेवाली कोई एक राष्ट्रिय भाषा व संपर्क भाषा का अभाव था। 20वीं शताब्दी के प्रथम दशकों में मगर स्थितियाँ भिन्न थी। उस दौर में लगभग सभी राजनेता , मनीषी एवं साहित्यकार एक संपर्क भाष , एक जनभाषा के पक्ष में अपना समर्थन घोषित किए , वह भाषा हिन्दी ही थी। हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने की वकालत में रवीन्द्र , बंकिम, गोखले, तिलक, गांधी, सूभाष, सावरकर आदि के प्रमुख योगदान को भुलाया नहीं जा सकता।

उस समय की हिन्दी जो काव्य अथवा साहित्यिक क्षेत्र में भले ही ब्रज , अवधि या अन्य किसी जनपदीय बोली का परिधान धारण किए थी , परंतु गद्य में विशेषतः मौखिक भाषणों , प्रचार के साधनो , सार्वजनिक सूचनाओं के स्तर पर वह भारतीय जन समुदाय की बोलचाल की हिन्दी थी जिसे खड़ी बोली , हिन्दुई, हिंदवी आदि कई नाम दिए गए थे, इसमें इसकी उर्दू शैली भी स्वभावतः शामिल थी। हिन्दी के इसी मिले-जुले सर्वसुबोध रूप को संस्कृत , ब्रज, अवधि, वरबी, फारसी तथा अँग्रेजी से अलग करने के लिए 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ के साथ इसका नाम हिंदुस्तानी दिया गया जो आगे चलकर हिन्दी कहलाई।

परन्तु 15 अगस्त 1947 के बाद हमारे तत्कालीन राष्ट्रिय नेताओं का स्तर प्रांतीयता में बदलने लगा। सभी प्रान्तों के सदस्य अपनी भाषा को राजभाषा बनाना चाहते थे। अलग-अलग भाषाओं यथा अँग्रेजी , हिन्दी, संस्कृत, बंगला के लिए दावे प्रस्तुत किए गए। अंततः काफी बहस के बाद हिन्दी को राजभाषा मान लिया गया परन्तु शायद लोगों ने इसे केवल संवैधानिक तौर पर स्थान दिया व्यावहारिक तौर पर नहीं। इस संबंध में संविधान सभा में बहस के दौरान आर॰ वी॰ धुलेकर जो उत्तर प्रदेश का प्रतिनिधित्व कर रहे थे , उनकी उक्ति एवं विचार को उद्धृत करना चाहूँगा। वे चाहते थे कि राजभाषा तथा राष्ट्रभाषा का निर्णय तत्काल किया जाना चाहिए। वे इस हक में नहीं थे कि अधिक दिनों तक टाला जाए। उनका विचार था कि अधिक देर करने से मामला खटाई में पड़ेगा और अँग्रेजी की नीति पूर्णतया सफल सिद्ध होगी जिसके आधार पर वे भारतीय को मानसिक तौर पर गुलाम बनाना चाहते थे। यहाँ मैं कहना चाहूँगा कि धुलेकर साहब की भविष्यवाणी कुछ अधिक सही साबित हुई। हिंदुस्तानियों पर अँग्रेजी भाषा का जादू 15 वर्षों का ही नहीं बल्कि अनियतकालीन प्रतीत होता है। आज राजभाषा को स्वीकार किए 68 वर्ष हो गए , क्या हम सभी अभी तक हिन्दी को राजभाषा का पूर्ण दर्जा दे पाए हैं?

क्या हमने संविधान द्वारा निर्देशित राजभाषा कार्यान्वयन के क्षेत्र में निर्धारित लक्ष्यों को पूरा कर लिए हैं ? शायद नहीं। आखिर क्या कारण है? इस मोड़ पर इसे जानना अति आवश्यक है।

हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान डॉ॰ शंभुनाथ लिखते हैं:- "हिन्दी दूसरी तमाम भाषाओं के मुक़ाबले बहुत तेजी से अपना चेहरा खो रही है। यह सिर्फ एक भाषा नहीं, एक जाति का बेचेहरा होना है, हिन्दी का अंग्रेजीकरण या गवारु रूपों में विकृतिकरण एक जातीय आत्मा का विकृतिकरण है। हिन्दी वैश्वीकरण की भाषा बनने पर कुछ व्यक्ति खुश हैं। वे हिन्दी के उपनिवेशिकरण को एक नई आशा से देख रहे हैं। वे यह समझने के लिए तैयार नहीं है कि हिन्दी समाज विश्व बाजार का एक प्रमुख निशाना है। हमला सिर्फ नई-नई उपभोक्ता वस्तुओं का ही नहीं , उपभोक्ता विचारों का भी है। नतीजा हिन्दी समाज में आत्म पहचान की भूख मंद पड़ती जा रही है। इसके ठीक विपरीत , हिन्दी पीछड़े इलाकों में भाषाई और सामाजिक भिन्नतावाद के नारे उठे हैं। स्थानीय अस्मिता का सवाल उठाकर हिन्दी की उप भाषाएँ बोलने वाले लोग, खासकर उनके बुद्धिजीवी, हिन्दी से अपना अलग भाषिक अस्तित्व घोषित कर रहे हैं। यदि यही स्थिति रही तो हिन्दी न अमीरों और अभिजनों से संपर्क की भाषा रह पाएगी और न गरीबों से संपर्क की भाषा। हिन्दी की जगह ले लेगी अँग्रेजी या हिन्दी समुदाय की उपभाषाएँ..... क्या हिन्दी का पूरा अस्तित्व सिर्फ अँग्रेजी के विरोध पर टीका हुआ था ? 21वीं सदी में प्रवेश के समय पूरा माहौल अंग्रेजीमय है। अँग्रेजी का विरोध कपूर की तरह उड़ गया है, सारी आग बुझ गई है। अँग्रेजी फिर से छाने लगी है और हिन्दी पृष्ठभूमि में चली गई है। हिन्दी माध्यम के विद्यालय भी अधिक फीस के लोभ में अँग्रेजी माध्यम के स्कूलों में बदल रहे हैं। सरकारी उपक्रमों के हिन्दी अधिकारी कैन्टीनों के प्रबन्धक बनाए जा रहे हैं या उन्हे दूसरे काम सौपे जा रहे हैं....."

उपरोक्त टिप्पणियों को उद्धृत करने का मुख्य आशय है कि इन 68 वर्षों में हमारी वस्तुस्थिति क्या है ? इतने वर्षों के बाद हमें आत्म-विवेचन और आत्म-मंथन करने की आवश्यकता है। यदि यही सच है तो निर्विवाद रूप से किसी न किसी स्तर पर समस्या अवश्य है।

आज हमें इस पड़ाव पर इससे समाबंधित सभी क्षेत्रों में जुड़ी समस्याओं पर पुनः विचार करना होगा ताकि हमें राजभाषा के पूर्ण कार्यान्वयन में सफलता मिले। आज हमे अपनी राह को एक बार फिर से मजबूत करना है। आज संकल्प लेने की जरूरत है कि हम स्वय का भारतीयकरण करे, अधिक से अधिक काम सरकारी हो या निजी, हिन्दी में करें तभी हिन्दी फलेगी-फूलेगी।

हिन्दी जो अब देश की राजभाषा के रूप में निरन्तर विकसित हो रही है , भविष्य में भी उत्कर्ष के उच्चतम शिखरों पर अपनी पताका फहराएगी। यही हमारा विश्वास है और यही हमारी मंगल कामना है। जब हम हिन्दी बोल या लिख रहे हों तो अपने आप में गर्व महसूस करना चाहिए क्योंकि हमलोग अपनी भाषा बोल रहे य लिख रहे हैं जो राष्ट्रभाषा, मातृभाषा संपर्क भाषा और राजभाषा है। फिल्म जगत के सर्वश्रेष्ठ कलाकार का पुरस्कार लेने वाले आशुतोष राणा के कुछ अंश को उद्धृत करना चाहूँगा - "मैं जिस भाषा में सोंचता हूँ अदाकारी करता हूँ जो मेरे सपनों की, अपनों की व्यवसाय की और मेरे देश की भाषा है, मैं सदा उसी भाषा का प्रयोग करता हूँ। इसलिए कि मैं इसी में सहज हूँ। अभिव्यक्ति जो मेरा पेशा है, इसे मैं अगर अपनी भाषा में करके पुरस्कार प्राप्त करता हूँ तब मैं दूसरी भाषा में नकली मुखौटा लगाकर कैसे बोलूँगा ? आप बेशक मुझसे अँग्रेजी में बात कीजिए , मेरा जबाब आपको मेरी अपनी हिन्दी भाषा में ही मिलेगी। केवल फिल्म जगत ही नहीं , हर जगह अँग्रेजी हमारे सर पर लाद दी गई है। दरसल अँग्रेजी अंग्रेजों की भाषा है जो हमारे आका थे और आज हम अँग्रेजी बोलकर उन्हे फिर से आका बना रहे हैं। पर आप यह कोण भूल रहे हैं कि अधिकार और राज करने , हुक्म चलाने की क्षमता आपकी भाषा में नहीं , आपके दिमाग में होती है।"

इनका उदाहरण इसलिए इदे रहा हूँ कि आज हमारे देश में ऐसे उदाहरण बहुत कम हैं। राजभाषा व राष्ट्रभाषा के प्रचार-प्रसार के लिए इनके तरह लोगों की ही जरूरत है। अतएव आवश्यकता है कि पहले हम , हमारे कार्यालयों के शाखाओं में राजभाषा के रूप में हिन्दी का पूर्ण विकास करें। आइए आज हम सब फिर एक बार यह शपथ लें कि आज से हम भारतीय भाषा को प्रतिष्ठित करने के इस आंदोलन में पूरे उत्साह के साथ फिर से एकबार शामिल हो जाए।

संदर्भ ग्रंथ :

1. हिन्दी - उद्भव, विकास और रूप - डॉ. हरदेव बाहरी - किताब महल
2. भाषा-विज्ञान एवं भाषा-शस्त्र - डॉ. कपिलदेव द्विवेदी
3. हिन्दी सब संसार - संपादक - प्रो. सुरेश ऋतुपर्णा
4. भाष विज्ञान : सैद्धांतिक चिंतन - रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव
5. आधुनिक बैंकिंग मे शब्द निर्णय - ओमप्रकाश बिल्लौरे
6. सम्प्रेषण एवं बैंकिंग व्यवस्था - सुभाष गौड़ - वाणी प्रकाशन
7. व्यावसायिक हिन्दी - प्रेमचंद पतंजलि - वाणी प्रकाशन